ISSN 2456-3838

पिक्चर प्लस

अप्रैल 2023
₹ 65
वर्ष 6, अंक 9

ज़िन्दगी का बायस्कोप

नाटु पर लट्टू

6

Total Pages with cover : 60
Posting Date : 10th to 12th of every month
Head Post Office : Krishna Nagar, Delhi - 110051

RNI No. DELBIL/2016/69352
Postal Regd. No. DL(E)-20/5556/2022-24

ज़िन्दगी का बायस्कोप

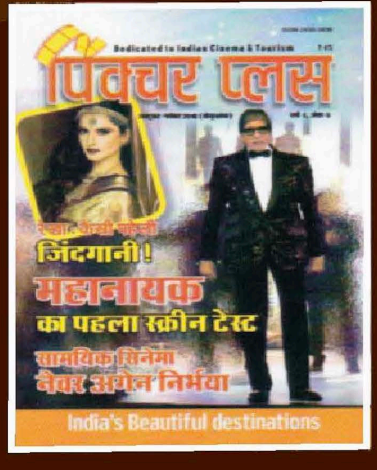

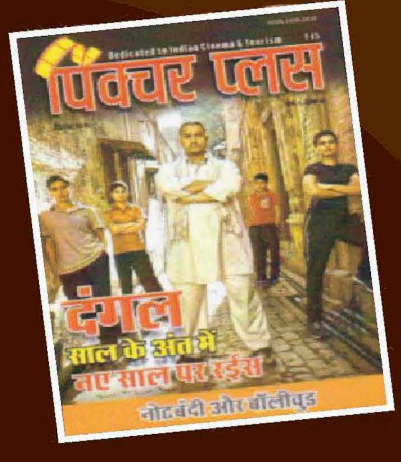

पिक्चर प्लस को ऑनलाइन भी खरीद कर पढ़ सकते हैं।

https://notnul.com

वेबसाइट पर जाएं और पिक्चर प्लस सर्च करें।

संपर्क : 93136 77771

pictureplus2016@gmail.com

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक संजीव श्रीवास्तव द्वारा 37-ए, गली नं. 2, प्रतापनगर मयूर विहार, फेज-1, दिल्ली-110091 से प्रकाशित।
चंद्रशेखर प्रिंटर्स, डब्ल्यू ज़ेड/439/नारायणा विलेज, नई दिल्ली-110026 से मुद्रित। संपादक : संजीव श्रीवास्तव

ISSN 2356 - 3838
Licence N. F2(P19) PRESS

पिक्चर प्लस

वर्ष-6,अंक-9, अप्रैल, 2023
मासिक, द्विभाषिक/हिंदी-अंग्रेजी

संपादक
संजीव श्रीवास्तव

संपादन सहयोग
कल्पना कुमारी

कवर डिजाइन
जाहिद मोहम्मद खान

लेआउट डिजाइन
शाश्वती

पंजीकृत पता
37/ए, तीसरी मंजिल, गली नंबर 2
प्रताप नगर, मयूर विहार
फेज -1, दिल्ली - 110091

मूल्य- 65 रुपये (एक प्रति)
वार्षिक - 1,000 रुपये (व्यक्तिगत)
5,000 रुपये (संस्थागत)

पत्रिका के डिजिटल संस्करण नॉटनल
(www.Notnul.com) से खरीद सकते हैं।
संपर्क - 9313677771
Email:Pictureplus2016@gmail.com

नोट : सभी रचनाओं में व्यक्त विचारों से पत्रिका की संपादकीय नीति तथा लेखक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं। पत्रिका के किसी भी पक्ष से संबंधित कानूनी निपटारे का न्यायिक क्षेत्र दिल्ली होगा।

(सभी चित्र इंटरनेट से साभार)

अनुक्रम

05 संपादकीय - चलती का नाम गाड़ी
06 अरविंद कुमार-माधुरी के वे दिन : असली 'गुड्डी' कौन थी?
ऑस्करनामा
08 रामगोपाल वर्मा - सिनेमा के सिकंदर निकले एसएस राजामौली
13 मकरंद देशपांडे - एपिक के मास्टर
16 मुजफ्फर अली - हमारे दिमाग बहुत छोटे हो गए हैं
17 सौरभ शुक्ला - क्या हम बर्मीज या मलेशियन को भी फिल्मफेयर पुरस्कार देते है?
20 जयनारायण प्रसाद - ऑस्कर, हम और हमारा सिनेमा
26 गौतम सिद्धार्थ - सवाल हमारी हैसियत का भी है
30 अजय कुमार शर्मा - एक बार फिर अंधायुग
32 संजीव श्रीवास्तव - लॉकडाउन से अधिक 'सिस्टम' ने सताया
35 मुकेश पोपली - मुखबिर: द स्टोरी ऑफ अ स्पाई
36 कृष्ण कुमार शर्मा - आधी हकीकत आधा फसाना
38 विकास कुमार- सत्यजीत रे और बासु चटर्जी से बातों बातों में
41 विजय कुमार तिवारी - साधना, सायरा और दीपिका
47 जान पहचान - 'पलक' से फलक की ओर मधुप श्रीवास्तव
48 विनोद तिवारी- फिल्म पत्रकारिता के पाठ - 2

50 Dialogue Plus With Shekhar Kapoor
57 पिक्चर प्रश्न 9
58 शुभ समाचार

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक संजीव श्रीवास्तव द्वारा 37-ए, गली नं, 2, प्रताप नगर, मयूर विहार, फेज-1, दिल्ली-110091 से प्रकाशित। संपादक - संजीव श्रीवास्तव। चंद्रशेखर प्रिंटर्स, WZ / 439, नारायणा विलेज, नई दिल्ली - 110026 से मुद्रित।

शब्दश:

शरद दत्त

साहब बीबी और गुलाम जब रिलीज़ हुई, तो दर्शकों में उसके प्रति उत्साह भी था और कुछ दृश्यों को लेकर आक्रोश भी। खासकर दो दृश्यों की लेकर। इनमें से एक दृश्य में छोटी बहू भूतनाथ से स्नेह व आत्मीयता का स्पर्श पाकर, भावाविष्ट हो, उसकी गोद में सिर रखकर लेट गई थी। दूसरे दृश्य में छोटी बहू ने अपने पति से कहा था- "मुझे शराब का आखिरी घूंट पीने दीजिए, आखिरी बार; मैंने इसे छोड़ने का निश्चय कर लिया है।" इन दोनों दृश्यों को गुरुदत्त ने दर्शकों की भावनाओं का सम्मान करते हुए फ़िल्म से निकाल दिया था।

गुरुदत्त का कहना था - "जब मैं प्यासा बना रहा था, तो इस तरह के निराशावादी विषय का चुनाव करने और उसे काव्यात्मक गीतों के साथ प्रस्तुत करने को एक दुस्साहसिक प्रयोग माना गया था, फिर भी दर्शकों ने उसे अपूर्व उत्साह के साथ स्वीकार किया था। लेकिन काग़ज के फूल में मैंने रूढ़ि से बाहर का विषय लेने की कोशिश की, तो दर्शकों ने उसे नकार दिया और कोई प्रतिक्रिया भी नहीं जताई। 'साहब बीबी और गुलाम' उपन्यास को मैंने फ़िल्म के लिए चुना, तो फ़िल्मी पंडितों ने आशंका प्रकट की थी। उनका ख़याल था कि पति का प्रेम पाने के लिए शराब को गले लगाने वाली पतिव्रता का चरित्र परदे पर दिखाना ख़तरे से खाली नहीं होगा। लेकिन इसका आधार था एक मंत्रमुग्ध कर देनेवाला उपन्यास, जिसके कारण मैं इसमें कूद पड़ा। मुझे यह कहने में ज़रा भी संकोच नहीं है कि समीक्षकों ने मेरे इस प्रयास की मेरी अपेक्षा से अधिक प्रशंसा की। कुल मिलाकर दर्शकों की प्रतिक्रिया भी उत्साहवर्धक रही।"

गुरुदत्त अंत तक यह जानने की कोशिश में लगे रहे कि अगर दर्शक साहब बीबी और गुलाम को पसंद कर सके, तो उन्होंने काग़ज़ के फूल को क्यों नकार दिया। लेकिन कुछ भी हो, जिस तरह सत्यजित राय की त्रयी तथा ऋत्विक घटक की त्रयी को बंगाली सिने-जगत की घटनाएं माना गया, उसी तरह गुरुदत्त की त्रयी- प्यासा, काग़ज़ के फूल तथा साहब बीबी और गुलाम को भी हिंदी- फ़िल्मों के इतिहास में मील के पत्थर माना जाएगा। •

('हस्ती नहीं मिटती' से)

चलती का नाम गाड़ी

सिनेमा के 'मरीज' !

मित्रो, पिक्चर प्लस के अप्रैल अंक से कुछ नया करने का प्रयास किया गया है। अभी ये बदलाव सिर्फ झलकियों के रूप में हैं। आगामी अंकों में इसका विस्तार हो सकेगा।

पिक्चर प्लस का मिशन कॉरपोरेट खड़ा करना नहीं है, वास्तव में हम को-ऑपरेशन को तत्पर हैं। इसमें सभी सिनेमा प्रेमी और फिल्मकार के सहयोग की दरकार है। यह ना सोचें कि पिक्चर प्लस किस घराने से निकल रही है, या कौन सी संस्था से निकल रही है और उस संस्था की पृष्ठभूमि क्या है आदि आदि। यकीन मानिये आपकी अभिरुचि और आवश्यकता ही पिक्चर प्लस का घराना और संस्था है।

हाल के कुछ सालों में बड़े व्यावसायिक मीडिया घरानों से सार्थक और सामयिक फिल्म पत्रकारिता के पहलू से हम निराश हो चुके हैं। अनायास कभी किसी ने कुछ प्रस्तुत कर दिया तो समझिए बेमौसम सावन आ गया लेकिन मौके पर मॉनसून नदारद।

लेकिन अगर हम उस पहलू से हताश हैं तो क्या हमें भी हाथ पर हाथ धरे बैठ जाना चाहिये? मेरा मन कहता है-नहीं। एक तरफ सरकारी अस्पताल की बदहाली और दूसरी तरफ सुपर स्पेशलिटी अस्पताल का आर्थिक शोषण, क्या इनके बीच कभी किसी ने सेवा अस्पताल की नींव नहीं डाली? ये हौसले की बात है। मंजिलें हमेशा हौसले से हासिल होती हैं। बीच रास्ते में आसमान से नहीं टपकती। यकीन मानिये पिक्चर प्लस सिनेमा के 'मरीजों' का सेवा अस्पताल है। जहां आप के सपनों के ऑक्सीजन सिलेंडर सुरक्षित रखे हुए हैं। यहां यादों का ऐसा वार्ड है जहां फूल खिले हैं गुलशन गुलशन। सोच-विचार का ऐसा ऑपरेशन थियेटर है जहां औजारों से काम नहीं लिया जाता, यहां शब्द, संवेदना, मनुष्यता और सामाजिकता की महक से सुजीवन दिया जाता है।

क्योंकि पिक्चर प्लस की फिल्म पत्रकारिता लंच, डिनर की 'थाली की चटनी' नहीं है। अगर किसी फिल्म में प्रेम, सौंदर्य, समाज, राजनीति सारे विषय शामिल होते हैं तो फिल्म पत्रकारिता के आयाम भी विस्तृत क्यों नहीं होने चाहिए? वह केवल स्टार्स को 'स्पॉट' करने तक सीमित क्यों रहे? क्या आपने कभी सोचा है कि स्टार्स कहीं देखे नहीं जाते हैं हमेशा 'स्पॉट' होते हैं। क्यों? क्योंकि व्यावसायिक मीडिया घरानों की फिल्म पत्रकारिता ने उसे यही कहकर बेचा है। उसे आम से अलग करके पेश किया है ताकि उसमें एक अलौकिकता पिरोई जा सके।

पिक्चर प्लस उस व्यावसायिक अलौकिकता से अभिभूत नहीं है। पत्रिका के जो पाठक वर्ग हैं, जो होना चाहते हैं, वे ही सिनेमा के असली कद्रदान हैं। हम आपके आगे नतमस्तक हैं। हम अरविंद कुमार, शरद दत्त जैसी शख्सियतों की दिखाई गई राह के राहगीर हैं। वे इस 'सेवा अस्पताल' के वास्तविक ट्रस्टी थे।

मित्रो, पिक्चर प्लस का हर अंक किसी ना किसी मुद्दे पर विशेष सामग्री प्रस्तुत करता है-सो, इस बार यह ऑस्कर और भारतीय सिनेमा पर केंद्रित है। इसमें नामचीन लोगों के अपने-अपने विचार हैं। लेकिन एक सवाल यह है कि हम 'कंटेंट' के स्तर पर विदेशी कटेगरी में बार-बार पिछड़ क्यों जाते हैं? या हमारा 'कंटेंट' वहां तक पहुंच ही नहीं पाता है?

हाल के सालों में हमने अपने सिनेमा में इंटैलेक्चुअलिज़्म और तार्किकता को अपनाने पर जोर दिया है (यह जरूरी भी है) और दो-चार बिग बैनर को छोड़ दें तो मनोरंजनवादी होड़ को भी कम किया है लेकिन बार-बार 'वो' हमें हमारे नाच गाने को ही अवॉर्ड दे देते हैं! यह हमारी नई टेंडेंसी के विरुद्ध है या कुछ और बात है? क्या हमें 'नाटु नाटु' को मिले ऑस्कर पर ही लट्टू रह जाना चाहिए?

यह अंक कैसा लगा, जरूर बताइएगा। और हां, पूर्व घोषणा के मुताबिक पत्रिका की कीमत 65/ हो गई है। तमाम खर्चों को देखते हुए ऐसा करना मजबूरी थी। अपना स्नेह बनाए रखें। सुझाव देते रहें। सादर।

आपका संपादक

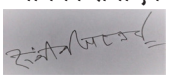

संजीव श्रीवास्तव

माधुरी के 'वे' दिन

असली 'गुड्डी' कौन थी? इसके पीछे है एक लंबी कहानी...

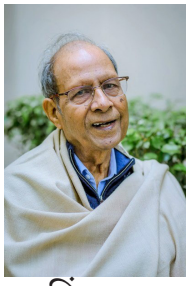

अरविंद कुमार

पहले मैं 1971 की फ़िल्म 'गुड्डी' की बात करता हूं। कुसुम (जया भादुड़ी) नाम की चुलबुली, मस्त और जीवंत लड़की अपनी क्लास सहेलियों की तरह फ़िल्मों की दीवानी है। क्लास में और क्लास के बाहर भी। उनकी जान-पहचान वाला रंग-बिरंगे भड़कीले कपड़े पहनने वाला कुंदन (असरानी) उनसे भी आगे है। उसका दावा है कि फ़िल्म वालों से उसकी जान-पहचान है और उनके ज़रिए उसे वहां काम भी मिल जाएगा। और कुसुम दीवानी है धर्मेंद्र की।

फ़िल्म के निर्देशक थे हृषिकेश मुखर्जी, फ़िल्म का आइडिया और कहानी गुलज़ार के थे। मैंने गुलज़ार का नाम सबसे पहले 1964 में सुना था, जब एक शाम मीना कुमारी अपने पति कमाल अमरोही के घर न जा कर उसके घर चली गई थीं। बाद में निजी जान-पहचान और मुलाकातें बढ़ती गईं और मैं उनकी कला का कायल होता चला गया। 1967-68 में वह हरनाम सिंह रवैल की क्लासिक फ़िल्म 'संघर्ष' के संवाद लिख रहे थे। रवैल साहब से मेरी निकट की जान पहचान हो गई थी। शत्रुघ्न सिन्हा का सितारा बुलंदी की तरफ़ बढ़ रहा था। मैं उसे तब से जानता था जब वह पुणे की फ़िल्म इंस्टीट्यूट से पास होकर आया था। मुझे दमदार शत्रु में बड़ी संभावनाएं दिखती थीं। मेरी ही सिफ़ारिश पर उसे मोहन सहगल की 'साजन' (1969) में दो मिनट का रोल मिला था। मैं ही नहीं पूरा 'माधुरी' परिवार उसका समर्थक था।

एक दिन दफ़्तर में मेरे पास रवैल का फ़ोन आया। उन्होंने कहा कि मैं शत्रुघ्न से कहूं कि वे उसे अपनी नई फ़िल्म में हीरो के तौर पर चौदह लाख रुपए देंगे, बशर्ते वह उनकी बेटी से शादी करने को तैयार हो। मैं अचकचाया। मैं रिश्ते कराने का काम करूं! यूं भी में पूनम के प्रति उसके लगाव से परिचित था। बात आई गई हो गई।

मैंने बताया कि रवैल की फ़िल्म 'संघर्ष' के संवाद गुलज़ार लिख रहे थे। वे जानते थे रवैल की बेटी रोशनी की ज़िद कि वह शादी किसी स्टार से ही करेगी। तो यह जानकारी बनी 'गुड्डी' की कहानी का बीज। प्रेरणा वास्तविक जीवन से थी। पर नायिका जस की तस किसी निर्माता-निर्देशक की बेटी नहीं हो सकती थी। इसलिए 'गुड्डी' की कुसुम है स्टारों की दीवानी जो कोई भी किशोरी हो सकती थी।

अब-

एक थी रोशनी। हरनाम सिंह रवैल की बेटी। वही थी असली प्रेरणा हृषिकेश मुखर्जी की गुलज़ार लिखित फ़िल्म 'गुड्डी' की। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना था कि रोशनी फ़िल्मी दुनिया में ही रहती थी। कलाकारों की दुनिया उससे अनजानी नहीं थी। वह किसी अभिनेता से शादी करना चाहती थी। और उसके जीवन प्रवेश किया एक अप्रत्याशित लड़के ने। लड़के का नाम था रतन चोपड़ा।

सुंदर सा राजकुमार रतन चोपड़ा फ़िल्मफ़ेअर - यूनाइटिड प्रोड्यूसर्स के टैलेंट कॉन्टेस्ट में प्रथम आया था। निर्णय घोषित होने बाहर से आए सभी प्रत्याशियों को होटल ख़ाली करने थे। उनके लिए हमारी तरफ़ से मदिरापान का प्रावधान नहीं था। उसे चर्चगेट के पास वाले किसी अच्छे होटल में ठहराया गया था। होटल वाले रिहा नहीं कर रहे थे। उसने जो शराब ली थी, वह उसका बिल चुकाने की हालत में नहीं था। मेरे सुझाव पर कॉन्टेस्ट के बजट में से भुगतान किया गया। उसके पास बंबई में रहने का कोई ठौर नहीं था। मैं उसे अपने घर ले आया। एक महीने वह नेपियन सी रोड पर प्रेम मिलन अपार्टमेंट में मेरे परिवार के साथ रहा।

वह पंजाब के मलेर कोटला का रहने वाला था। वहीं के थे मेरे मित्र कुलवंत मदान और उनकी पत्नी ज़ुबैदा। रतन से उनका संपर्क होने में देर नहीं लगी। कुलवंत मोने सिख थे, ज़ुबैदा से उनका विवाह सुखी रहा। आज कुलवंत नहीं है, पर ज़ुबैदा से मेरा संबंध यथावत रहा। बाद में अपने बेटे अमन के पास बेंगलुरु चली गईं। उनसे एक बार फ़ोन पर बातें हुई थीं तो काफ़ी नई जानकारी मिली रतन के वर्तमान जीवन के बारे में।

रवैल साहब को तलाश थी अभिनेता दामाद की। उन्होंने मुझ से पूछा तो